उत्तराखंड की भोटिया जनजाति : एक अध्ययन

प्रो. सतेन्द्र नारायन[1] और कविता कनौजिया[2]

[1] विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, उपाधी महाविद्यालय, पीलीभीत, उत्तर प्रदेश, भारत

[2] शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, उपाधी महाविद्यालय, पीलीभीत, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence Author: प्रो. सतेन्द्र नारायन

Received 24 Sep 2022; Accepted 4 Nov 2022; Published 16 Nov 2022

सारांश

भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा भारत के मूल निवासियों का है जिन्हें आदिवासी कहा गया है और पुराने लेखों में आदिवासियों को आत्विका और बनवासी भी कहा गया है। भारतीय संविधान में समस्त आदिवासी जातियों को अनुसूचित जनजाति में रखा गया है। भारत की कुल जनसंख्या में आदिवासियों कि लगभग 9 प्रतिशत आबादी है। प्रजाति के आधार पर भारतीय कबीलों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है– प्रथम श्रेणी में असमी या अल्मोड़ा जिले के भोटिया, मंगोलिया मूल के नागा, कुकी एवं गारो आदि कबीले आते हैं। दूसरी श्रेणी के अंतर्गत कोरबा, मुंडा, संथाल आदि पूरा आस्ट्रेलियायी कबीले और तीसरी श्रेणी में हिंदुस्तान के मूल निवासी आर्य मूल से निकले हिमालयवासी और आर्य की संकर प्रजाति के भील कबीलों को रखा गया है। उत्तराखंड के उत्तरी भूभाग पर लगभग 30^0 30′ डिग्री उत्तरी अक्षांश से 81 डिग्री पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित लगभग 5000 वर्ग मील के क्षेत्रफल में भोटिया जनजाति निवास करती है। पिथौरागढ़ जनपद में पार्वती सरोवर नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है यहां पर हर साल फरवरी में मेला लगता है और लाखों लोग इस सरोवर में स्नान करने के लिए आते हैं। पिथौरागढ़ से होकर ही कैलाश मानसरोवर के लिए रास्ता जाता है। पिथौरागढ़ जिले में से भी लगभग 90 प्रतिशत भोटिया धारचूला एवं मुनस्यारी तहसील में तथा शेष 10 प्रतिशत अन्य तहसीलों में निवास करते हैं। भोटिया जनजाति का मूल निवास स्थान धारचूला एवं मुनस्यारी ही हैं। इस पेपर में हम भोटिया जनजाति के निवासियों के बारे में विस्तार से जानेंगे।

मूलशब्द: भोटिया, उत्तराखण्ड, पिथौरागढ़, मंगोल जाति, आदिवासी, अनुसूचित जनजाति।

परिचय

भोटिया जनजाति उत्तराखंड के सबसे पुराने समुदायों में से एक है। जनजाति का मानना है कि वे खस राजपूतों के वंशज हैं, जो इस क्षेत्र में उनकी प्राचीन उत्पत्ति की धारणा को और पुष्ट करता है। भोटिया शब्द की उत्पत्ति भोट से मानी जाती है जिसका अर्थ तिब्बत से है, अतः तिब्बत से लगे हुए क्षेत्रों को भोटांत कहा जाता है और वहां के निवासियों के लिए भोटान्तिक, भोटा, भोट, भोटिया, भोटानी, शौका आदि नामों से जाना जाता है। यहाँ के निवासियों की भाषा पर तिब्बतियों का वहुत प्रभाव है। जनजाति के कई उप–समूह हैं, जिनमें मार्छा, तोलचा, जोहारी, शोका, दर्मियान, चौंदासी, व्यासी, जाड़, जेठरा और छपरा (जिसे बखारिया भी कहा जाता है) शामिल हैं।

इस जनजाति के लोग कद में छोटे, आँखो के भीतरी भाग में विशेष प्रकार के मोड़ (एपिकेन्थिक), चपटी नाक, मोटे व खड़े बाल पाए जाते हैं, जो मंगोल जाति की भी विशेषता है जिस कारंण भोटिया जनजाति को मंगोल प्रजाति के अन्तर्गत रखा जा सकता है। भोटिया लोग मुख्य रूप से महान हिमालय की तलहटी में रहते हैं। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण, उनके घर मुख्य रूप से लकड़ी से बने होते हैं और उनमें छोटे दरवाजे होते हैं। उनकी बस्तियाँ विभिन्न स्थानों पर स्थित हैं, जिनमें माना, वनकुली, अवध गाँव और गढ़वाल में विष्णु गंगा घाटी के गाँव शामिल हैं। वे मुनस्यारी क्षेत्र की जोहार घाटी और पिथौरागढ़ के धारचूला के साथ–साथ उत्तरकाशी में भागीरथी घाटी के नेलांग और जादांग गाँवों में भी पाए जाते हैं।

शारीरिक विशेषताएँ और वस्त्र

भोटिया जनजाति की शारीरिक विशेषताएँ तिब्बती और मंगोल वंश का मिश्रण हैं। वे आम तौर पर छोटे कद, गोल चेहरे, छोटी आँखें, चपटी नाक और गोरे रंग के होते हैं। पुरुषों के पारंपरिक परिधान में अंगरखा रंगा (ऊपरी वस्त्र का एक प्रकार), गजू या खगचासी के नाम से जाना जाने वाला पायजामा और बंखे नामक ऊनी जूते शामिल हैं। महिलाओं के पारंपरिक परिधान में च्युमाला, च्युंकला, च्युबती, ब्यूजय और कम्बायी जैसी वस्तुएँ शामिल हैं।

आभूषण

भोटिया बोली में, आभूषणों को 'साली–पुली' कहा जाता है। महिलाएँ बालडांग, खोंगली और मंसाली जैसे हार पहनती हैं। सिर के आभूषणों में वीरावली, छंकरी वाली और पटेली वाली शामिल हैं। अंगूठियों को लक्षेप कहा जाता है।

भोजन

भोटिया आहार में मुख्य रूप से छाकू (चावल), छमा (दाल और सब्जियाँ) और कुटो (रोटी) शामिल हैं। वे मांस के शौकीन हैं और उनका पारंपरिक पेय, ज्या, चाय की पत्तियों, नमक और मक्खन से बनाया जाता है। वे चायतकी छांग नामक एक प्रकार की शराब भी पीते हैं और जौ, गेहूँ और मडुआ से बने सत्तू का आनंद लेते हैं।

सामाजिक रीति–रिवाज

भोटिया जनजाति कई सामाजिक रीति–रिवाजों का पालन करती है। उदाहरण के लिए, भुमौ अनुष्ठान में नवजात शिशु को तीन महीने की उम्र में नए कपड़े दिए जाते हैं। भाई–बहनों के साथ एक बड़ा या बच्चा बच्चे को अपनी पीठ पर उठाकर घर के मुख्य द्वार से नौ बार गुजरता है। प्रस्यावोमो समारोह तब आयोजित किया जाता है जब बच्चा तीन, पाँच या सात साल का हो जाता है। इस आयोजन के दौरान, रिश्तेदार और ग्रामीण तीन, पाँच, सात या नौ व्यक्तियों द्वारा बच्चे के बाल काटे जाने को देखने के लिए एकत्रित होते हैं। एक अन्य परंपरा, बुधनी, में बच्चे के 20 वर्ष का होने से पहले बुधनी में सभा कोमो और व्यास पट्टी में चौदस के रूप में उत्सव मनाया जाता है।

भोटिया जनजाति पितृसत्तात्मक व्यवस्था का पालन करती है, और उनके मुख्य देवताओं में भूम्याल, ग्वाल, बंग रंग चिम, फैला और घुरमा शामिल हैं। उनके समुदाय में एक विवाह प्रथा आदर्श है। हर 12 साल में, वे कंडाली नामक त्यौहार मनाते हैं। आषाढ़ महीने के आगमन पर जेठ पूजा समारोह मनाया जाता है, और वे अपने रिश्तेदारों को स्वरा कहकर पुकारते हैं।

आवास

भोटिया जनजाति के लोग ग्रीष्मकालीन और शीतकालीन दो तरह के आवास बनाते हैं। निचले स्थानों में शीतकालीन आवास बनाए जाते हैं जो कि शीतकाल की जलवायु के हिसाब से अनुकूल होते हैं और इस समय में यह लोग कुमाऊं ब भाबर के मैदानी भागों से व्यापार करते हैं जबकि ग्रीष्मकाल में इनके आवास ऊंचाई पर बनाए जाते हैं जो तिब्बत से व्यापार करने के लिए उपयुक्त होते हैं। ज्यादातर उनके आवास समूह में होते हैं। घाटियों में पाए जाने वाले आवासों को तल्ला गांव एवं अधिक ऊंचाई या पर्वतीय टीलों पर पाए जाने वाले आवासों को मल्ला गांव का जाता है। उपरोक्त विवरण से साफ है कि तल्ला गांव का उपयोग शीत ऋतु में एवं मल्ला गांव का प्रयोग ग्रीष्म ऋतु में किया जाता है। इनके मल्ला गांव तिब्बत से संलग्न विभिन्न गीरिद्वारों के पास पढ़ते हैं। इन मल्ला गांव के समीप हरि एवं मुलायम घास बहुतायत में पाई जाती है जोकि जानवरों के चारे हेतु उपयुक्त होती है इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में भोटिया जनजाति के लोग तिब्बत से व्यापार एवं बुग्याल चरागाहों का लाभ प्राप्त करते हैं।

भोटिया जनजाति में मकानों की संरचना भी आकर्षक होती है। भोटिया जनजाति के मकान में मकान के अंदर घुसते ही सर्वप्रथम आंगन पाया जाता है जोकि गृहस्वामी की आर्थिक स्थिति के अनुसार विभिन्न आकार के होते हैं। आंगन में घुसते ही सर्वप्रथम एक विशिष्ट संरचना दिखाई देती है जिसे स्थानीय भाषा में गोठ कहते हैं और इसमें पशुओं को पाला जाता है, और गोठ की संरचना से मिलते जुलते ही मकान के अन्य कमरे पाए जाते हैं।

भोटिया जनजाति ज्यादातर मंगोलियन हैं, और माना जाता है कि जनजातियों में संसतरण नहीं होते। इसके पश्चात भोटिया जनजाति की सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार की है इसके बारे में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी से यह नतीजा निकलता है पिथौरागढ़ जनपद की भोटिया जनजाति को सांस्कृतिक क्षेत्र के हिसाब से मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता हैः

जोहार, मुनस्यारी के भोटिया

यह भोटिया जनजाति राजपूत एवं ब्राह्मण 2 जातियों में बंटी हुई है। इन लोगों की पुरानी वंशावली के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं प्राप्त होती न ही किसी पुस्तक में इनकी वंशावली दी गई है। स्वयं भोटिया जनजाति के परिवारों को अपनी उपजाति, गोत्रा, शाखा आदि के बारे में सटीक जानकारी नहीं है। यहां के कुछ लोग तो अपनी उत्पत्ति गढ़वाल क्षेत्र के रावतों से मानते हैं और स्वयं को कोशिल गोत्र का बताते हैं जबकि अन्य लोग अपने आप को बनारस के भट्टों से संबंधित मानते हैं और कौशिक गोत्र बताते हैं।

दारमा के भोटिया

दारमा व्यास के भोटिया स्वयं को राजपूत कहते हैं और वो भोटांटिक बोली में अपनी जाति 'र' बताते हैं। यहां के निवासियों की भाषा पर तिब्बतियों का प्रभाव है। इनकी भाषा शाका है। यह लोग हिंदी गढ़वाली और नेपाली भाषा बोल लेते हैं। ज्यादातर भोटिया अपने आप को हिंदू राजपूत मानते हैं। जाड, खंपा एवं कोली भोटानी बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं जबकि नेत्वाल हिंदू धर्म को मानते हैं। भोटिया राजपूत, नेगी, भंडारी, बिष्ट, राणा आदि उपनाम लगाने लगे हैं। लामा को गुरुओं का स्थान प्राप्त है और वही भोटिया जनजाति के धार्मिक संस्कार कराते हैं। बदलते समय के साथ साथ भोटिया जनजाति में स्थानीय देवी–देवताओं के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास बढ़ा है और अब वह स्थानीय पंडितों से हिंदू धार्मिक संस्कार आदि कराने लगे हैं। कोली भोटिया को इनके समाज में हरिजन माना जाता है तथा इनके साथ खानपान आदि नहीं किया जाता।

धर्म

प्रत्येक भोटिया गांव या दो तीन गांवों के मध्य में एक धर्माचार्य होता है जिसे बाकी या पुछेर कहा जाता है और समस्त धार्मिक क्रियाएं इसके द्वारा कराई जाती हैं। इनके समाज में ओझा की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण होती है जिसे डल्या ओल्या कहा जाता है। भोटिया जनजाति के लोग नंदा देवी, हिमशिखर, मणिभद्र, कटोरिया देवी, यक्ष, चांद देवता, घंटाकर्ण देवता, गंगा नदी, सिघ्वा–विध्वा देवता, नरसिंह देवता, नाग देवता, भव्याल या क्षेत्रपाल आदि की पूजा करते हैं। यह समाज हिंदू धार्मिक परंपरा को मानता है यह लोग अंधविश्वासी होते हैं और भूत–प्रेत, आत्मा आदि पर भी विश्वास करते हैं और इनसे डरते भी हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भोटिया जनजातीय क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, वन, चारागाह आदि से समृद्ध है और जिसका समुचित उपयोग इनके परंपरागत आर्थिक क्रियाओं को वैज्ञानिक रूप प्रदान कर सकता है और जिसके फलस्वरूप इन की अर्थव्यवस्था अत्यंत सुदृढ़ हो सकती है।

पिथौरागढ़ जिला कुमायूं हिमालय के अंतर्गत आता है जो हिमालय का एक पर्वतीय भूभाग है। कुमायूं हिमालय का यह भाग प्राचीन समय में अनेक राजनीतिक परिस्थितियों का सामना कर चुका है। 750 ईसवी से पूर्व का इतिहास स्पष्ट नहीं मिलता है परंतु उसके पश्चात के ऐतिहासिक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि यहां नंद, कुषाण, मौर्य, वर्धन एवं पौरव वंश का शासन स्थापित हो चुका है। 750 ईसवी से 1223 ईस्वी तक कत्यूरी वंश यहां पर शासन था। 1223 से 1445 ईसवी का काल यहां राजनीतिक उथल–पुथल का काल है, जिसमें छोटे–छोटे ठाकुर राजा राज करते थे। इसके पश्चात कुमायूं में चंद्रवंश तथा गढ़ देश में पवार वंश का शासन 1770 ईस्वी तक चला। इसके पश्चात यह भूभाग गोरखाओं के शासन के अधीन हो गया और जो अंग्रेजों के कारण 1815 ईसवी में समाप्त हो गया और यहां अंग्रेजों का शासन स्थापित हो गया।

1715 ईस्वी में नवाब असाफउद्दीन ने उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग ईस्ट इंडिया कंपनी को दे दिए थे। सन 1801 ईस्वी में अवध के नवाब ने गंगा–यमुना दोआब को जीत लिया था। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य गंगा–यमुना दोआब को विस्तीर्ण करना बन गया था। अतः 1856 ईस्वी में गंगा–यमुना दोआब अवध प्रांत में सम्मिलित कर दिया गया। इस प्रकार पहली बार यह मैदानी भाग का अभिन्न अंग बन गया। अवध और आगरा प्रांत को मिलाकर अंग्रेज शासकों ने 1901 ईस्वी में एक संयुक्त प्रांत बना दिया। इस समय देहरादून को मेरठ मंडल तथा 1936 ईस्वी में टिहरी रियासत को पंजाब प्रांत में सम्मिलित कर दिया गया। 1949 ईस्वी में टिहरी रियासत को एक स्वतंत्रा जिला बनाकर पंजाब प्रांत से अलग कर कुमायूं मंडल में सम्मिलित किया गया। इस समय कुमायूं मंडल का वर्तमान स्वरूप उत्तरांचल प्रांत के समान हो गया था। 1960 में कुमायूं मंडल को तथा उत्तराखंड मंडलों में विभाजित कर दिया जिसे 1969 गढ़वाल मंडलों के रूप में पुनर्गठित किया गया परंतु देहरादून इस समय भी मेरठ मंडल में ही था। 1973 ईस्वी में देहरादून को मेरठ मंडल से अलग कर गढ़वाल मंडल में मिला दिया गया। 2000 में हरिद्वार जनपद को गढ़वाल मंडल तथा कुमायूं मंडल में मिलाकर उत्तरांचल राज्य का गठन किया गया।

अनुपम भवनों की बनावट, अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य, पवित्र धार्मिक स्थलो, कल–कल वेग से प्रवाहित होती नदियों, देवधार, चीड़ आदि के सघन वनों से सुशोभित, धवल पर्वतों की मनमोहक छटाएं एवं विशेष सामाजिक संस्कृतिक संरचना की वजह से कुमायूं हिमालय भाग एक अप्रतिम भौगोलिक एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में जाना जाता है।

अति प्राचीन समय से ही पिथौरागढ़ जिले की अर्थव्यवस्था भोटिया जनजाति की अर्थव्यवस्था पर काफी हद तक निर्भर थी। प्राचीन काल से ही यातायात की असुविधा के कारण भोटिया जनजाति का

व्यापारिक संपर्क तिब्बत से हो गया था और जिसके कारण वस्तुओं का आदान प्रदान यहां की अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्रोत था।

भोटिया जनजाति में महिलाऐं

भोटिया शब्द की उत्पत्ति भोट से मानी जाती है जिसका अर्थ तिब्बत से है। और क्योंकि इनका अधिक पर व्यापार तिब्बत से होता था इसीलिए यहां के निवासियों की भाषा पर तिब्बतियों का बहुत गहरा प्रभाव है। तिब्बतियों की भांति ही यहां के लोगों की बनावट मंगोल जाति की तरह है। किस जाति की महिलाएं विशेष पढ़ी–लिखी तो नहीं होती है परंतु बहुत मेहनती होती हैं और घर परिवार अधिकतर वही चलाती हैं।

इस जनजाति की महिलाओं को सुंदर आभूषण एवं वस्त्र पहनने का बहुत शौक होता है। महिलाएं मेहनती होती है और किसी भी मेहनत के कार्य को बखूबी निभाती हैं जैसे पत्थर काटना, खेती करना, पशुओं के चारे का बंदोबस्त करना, घर में दूर स्थानों से पानी लेकर आना आदि मेहनत के काम बखूबी करती हैं।

इस जनजाति की महिलाओं का अध्ययन इसीलिए भी आवश्यक है कि इस जनजाति में महिलाओं को काफी स्वतंत्रता मिली हुई है और वे परिवार की मुखिया की भूमिका में रहती हैं, जबकि भारत में आजकल महिलाओं को परिवार का मुखिया बनाने के लिए अब अभियान चल रहा है जबकी इस जनजाति में बहुत पहले से ही यह प्रथा चली आ रही है।

भोटिया जनजाति के लोगों का आर्थिक जीवन

भोटिया जनजाति मुख्य रूप से कृषि, पशुपालन, व्यापार और ऊनी कपड़ा उत्पादन में संलग्न है। वे कटिल विधि के रूप में जानी जाने वाली स्लैश–एंड–बर्न कृषि का अभ्यास करते हैं, जो झूम खेती के समान है। वे भेड़, बकरी और जेबू (पहाड़ी याक) जैसे जानवर पालते हैं।

ऐतिहासिक रूप से, भोटिया लोग तिब्बत के हुनिया व्यापारियों के साथ व्यापार करते थे, लेकिन 1962 के भारत–चीन युद्ध के बाद यह व्यापार बंद हो गया। भोटिया जनजाति को उत्तराखंड की सबसे प्राचीन जनजातियों में से एक माना जाता है।

आर्थिक रूप से भोटिया जनजाति के लोग विषम भौगोलिक दशाओं से बहुत प्रभावित हैं इनके यहां पर कृषि भूमि का नितांत अभाव है और कुछ पर्वतीय भागों में शीत की अधिकता के कारण कृषि इनके जीवन का प्रमुख आधार नहीं बन सकती। अर्थव्यवस्था पर जलवायु का विशिष्ट प्रभाव होता है, इनमें शीतकालीन एवं ग्रीष्मकालीन तरह की अर्थव्यवस्थाओं पर निर्भरता बढ़ा दी है, ग्रीष्म काल में यह लोग ऊंचे स्थानों पर स्थित हरी एवं मुलायम घास से समृद्ध बुग्याल चारागाहों और भेड़ पालन व्यवसाय से शीतकाल में व्यापार करते हैं। उत्तरी सीमा के भागों में हिमालय की ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं के बीच में स्थित अनेक गिरी द्वारों ने भोटिया जनजाति को तिब्बत के साथ व्यापार के लिए प्रोत्साहित किया है। मानवीय अस्तित्व के लिए प्राकृतिक संसाधन विशेष रूप से अनिवार्य होते हैं, किसी भी स्थान का व्यवसाय वहां के प्राकृतिक वातावरण पर निर्भर करता है।

एसएस खनका (1990) के अनुसार पिथौरागढ़ क्षेत्र की कृषि भूमि अनेक समस्याओं से त्रस्त है जैसे खेतों का छोटे–छोटे टुकड़ों में एवं दूर–दूर होना एवं इसमें अनुपजाऊ और छिद्र युक्त मिट्टी, सिंचाई की सुविधाएं न होना और मिट्टी का कठोर धरातल आदि यहां के कृषि के प्रसार में रुकावटें डालते हैं। डॉ. जेसी गडकोटी (1998) के अनुसार कृषि पिथौरागढ़ जनपद के आर्थिक विकास की धुरी रही है और यहां के लोगों की जीविका का प्रमुख आधार है। यहां की अधिसंख्य ग्रामीण जनसंख्या मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है और कुल जनसंख्या का लगभग 75% कृषि कार्य में संलग्न है। यहां की ग्रामीण जनसंख्या के वितरण पर कृषि भूमि का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। पूरे देश की बढ़ती जनसंख्या का प्रभाव यहां भी पड़ा है और यहां की जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्न फसलों की और अन्य कृषि उत्पादों की मांग बढ़ी है, जिससे यहां भूमि उपयोग पर निरंतर दबाव बढ़ रहा है। किंतु कृषि भूमि मात्र जनसंख्या के द्वारा ही परिचालित नहीं होती है बल्कि कृषि योग्य भूमि की विभिन्नता के लिए अनेक अन्य तत्व भी उत्तरदाई हैं। डीएस चौहान (1966) के अनुसार इन तत्वों को सामान्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है प्रथम वर्ग में वे प्राकृतिक तत्व आते हैं, जिसके अंतर्गत स्थित धरातल, जलवायु एवं मिट्टी को शामिल किया जा सकता है। द्वितीय वर्ग में आर्थिक तत्व आते हैं जैसे धन/पूंजी आदि, एवं तृतीय वर्ग में संस्थागत तत्व आते हैं जैसे सांस्कृतिक वातावरण, रीति रिवाज एवं परंपराएं, सामाजिक एवं सामूहिक क्रियाएं, मूल्य एवं वैधानिक तंत्र, अभिरुचि आदि।

जैसा कि पहले बताया गया है भोटिया जनजाति के लोग ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन ग्रहों का निर्माण क्रमशाह पहाड़ की ऊंचाइयों पर एवं तलहटी के मैदानों में करते हैं और इसी प्रकार इनके इनकी कृषि भूमि भी पहाड़ों के ऊपर एवं तलहटी के मैदानी भागों में अलग–अलग होती है और वहां पर अलग–अलग फसलें उगाई जाती हैं जैसे ऊंचे भागों की भूमि पथरीली और शुष्क है अतः वहां पर पैदावार कम होती है और इन क्षेत्रों में अत्यधिक शीत के कारण वर्ष में केवल एक ही फसल उगाना संभव है, जबकि निचली घाटियों की भूमि कृषि हेतु अच्छी है एवं सिंचाई की सुविधाएं भी उपलब्ध हैं, अतः इन क्षेत्रों में फसल अच्छी होती है। आजकल अधिकतर भोटिया जनजाति निचली उपजाऊ घाटियों में ही स्थाई रूप से रहने लगे हैं क्योंकि तिब्बत का व्यापार बंद होने से कृषि ही इनकी जीविका का प्रधान साधन बन गई है और इसीलिए कृषि की उपज भी तेजी से बढ़ी है। अतः इस क्षेत्रा को कृषि हेतु स्थाई रूप से उपयोग किया जाता है। पंत तथा जोशी ने भोटिया जनजाति क्षेत्राों के उच्च एवं नीचे विभागों की सापेक्षिक स्थिति के अनुसार कृषि को निम्नलिखित तीन मुख्य भागों में विभाजित किया है–

क. एप्रोन या शुष्क कृषि

ऊंचे पर्वतीय भागों एवं मध्यम ढालों के सहारे और बिना सिंचाई या कम सिंचाई के द्वारा की जाने वाली खेती को एप्रोन कृषि कहा जाता है। वास्तव में यह शब्द ऊंचे भागों में स्थित कृषि भूमि के लिए प्रयुक्त होता है। इस भूमि में मुख्यतः मडुवा, झिगौर, उबा (Tiban barley), फाँफर, नपल (Himalayan Wheat), ओगल या पल्ती (Buch Wheat), गेंहूँ, चुआ, जौ, दालें आदि हैं। ज्यादातर अपरौन खेती ढालों पर सीड़ीनुमा खेतों द्वारा की जाती है। अपरौन कृषि के अंतर्गत 2 वर्ष में तीन फसलें (दो खरीफ की एवं एक रवि की) पैदा की जाती है। इसमें निम्नलिखित अनुसार फसलें उगाई जाती हैं– जैसे धान एवं झिगौरा अप्रैल में बोया जाता है, गेहूं एवं जौ अक्टूबर में बोया जाता है, मडुवा मई में बोया जाता है और अगले 6 महीनों के लिए कृषि भूमि को खाली छोड़ा जाता है। इसी तरह फिर खरीफ काल से पुनः यही क्रम दोहराया जाता है। गांव की संपूर्ण कृषि भूमि को इस उद्देश्य से दो भागों में बांटा जाता है जिसे सार कहते हैं, और इसमें भी वर्ष के अंतराल में इसी प्रकार से फसलों का क्रम दोहराया जाता है।

ख. तालौन या सिंचाई से भरपूर कृषि

अपरौन भूमि से नीचे एवं नदियों की तलहटी में निम्न ऊंचाई वाले भागों में की जाने वाली कृषि को तालौन कृषि कहते हैं। इस कृषि में अच्छी एवं गहरी कांप मिट्टी, सिंचाई हेतु पर्याप्त जल की प्राप्ति और मध्यम तापमान वाले भागों में, इस कृषि के माध्यम से अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इस तरह की कृषि सीढ़ीदार खेतों में न करके सामान्य विधि से की जाती है। उपजाऊ भूमि होने के कारण इसमें विभिन्न किस्म की फसलें बोई जाती हैं। तालौन भूमि दो प्रकार की होती है– सेरा एवं समान्य तालौन। इस भूमि का विभाजन मिट्टी की गुणवत्ता एवं उत्पादकता के आधार पर किया जाता है। सेरा भूमि सर्वोत्तम किस्म की भूमि है जिसमें उत्तम कांप मिट्टी और नियमित जल साधन उपलब्ध होते हैं। तालौन खरीफ एवं रबी की 2 फसलों के लिए उपयुक्त होती है। खरीफ फसल के अंतर्गत इसमें धान, मिर्च, दालें तथा रवि के अंतर्गत गेहूं, जौ एवं सरसो उगाया जाता है। यह धान की खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

ग. विरामी कृषि

यहां के अधिकांश समतल या असमतल , ढालू मैदानों में विरामी कृषि की जाती है, जो एक या दो फसल लेने के बाद खाली छोड़ दी जाती है। इस तरह 5 साल में इस तरह की कृषि में मात्र तीन फसलें ही ली जाती हैं और कुछ वर्षों तक विराम देने के बाद यह भूमि नियमित कृषि हेतु उपयुक्त हो जाती है। जब यह कृषि समतल खेतों में की जाती है तो उसे कातिल कहते हैं। मडुवा या सांबा इस कृषि की सर्वाधिक उपयुक्त फसल हैं, अन्य फसलों में झिगोरा एवं चुआ हैं।

अतः यहाँ के लोग कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उन्नतशील बीजों, खाद, कीटनाशकों आदि का प्रयोग करते हैं। यहां के कृषि में आजकल के उन्नतशील औजारों का उपयोग संभव नहीं हो पाता है क्योंकि ऊंचाई पर वह साधन नहीं पहुंच पाते हैं, इसीलिए यहां के लोग मानव श्रम साधनों पर ही निर्भर करते हैं। मानव द्वारा ही यहां बीज बोया जाता है एवं फसलें काटी जाती हैं।

कृषि में नव परिवर्तन

क्योंकि तिब्बत से व्यापार बंद होने के पश्चात भोटियों का प्रमुख आय का साधन कृषि तथा बागवानी हो गया है। भोटांचल में अब लगभग संपूर्ण कृषि योग्य भूमि का उपयोग किया जाने लगा है। निचली घाटियों में यहां पहले से ही परंपरागत ढंग से कृषि होती थी। भोटिया जनजाति क्षेत्रों में अब कृषि के परंपरागत तरीके बदलने लगे हैं जैसे धारचूला तहसील की ग्राम पंचायत सोसा के लगभग 80 प्रतिशत परिवार अब वर्ष में एक बार तैयार होने वाली आलू एवं राजमा की खेती करने लगे हैं, इस आलू एवं राजमा को वे स्थानीय बाजारों के अतिरिक्त कृषि मंडियों में ले जाकर बेचते हैं, जिससे उन्हें नगद धन की प्राप्ति होने लगी है। जिससे इस गांव में कुछ मात्रा में बेरोजगारी में कमी आई है। इस गांव के कुछ प्रगतिशील किसानों ने सेब के बगीचे भी लगाएं हैं। सोसा गांव के किसानों की प्रगति को देखकर चौदांस क्षेत्र के अन्य गांव के किसानों ने भी इस तरह की व्यवसायिक खेती को अपना लिया है। मुनस्यारी तहसील के विभिन्न सीमांत गांवों में भी इसी प्रकार आलू एवं राजमा की व्यवसायिक खेती की जाती है। इस क्षेत्र का आलू एवं राजमा बहुत स्वादिष्ट होता है।

हिमालय का पर्वतीय भाग प्राचीन काल से ही प्राण रक्षक औषधीय, उत्पादों का गढ़ रहा है। शेर सिंह पांगती के अनुसार जोहार घाटी में जड़ी–बूटी के विकास के लिए व्यक्तिगत तथा सहकारिता के आधार पर जड़ी बूटियों के कृषिकरण का प्रयास किया जा रहा है। जिंबू एक प्रकार की जंगली घास है जिसका 1970 के पश्चात जोहार क्षेत्रा में कृषिकरण किया गया जो, पूर्णतया सफल रहा। आधुनिक समय में यहां के कुछ लोग प्रतिवर्ष लाखों रुपए के जिंबू का उत्पादन कर रहे हैं। जिंबू के अतिरिक्त इस क्षेत्र में कुटकी, गन्द्रायन, रतनजोत एवं अतीस की भी खेती की जाती है।

पशुपालन

पशुपालन के अंतर्गत भोटिया जनजाति भेड़, बकरियां, जिबू एवं तिब्बती कुत्ते आदि को पालते हैं। इस क्षेत्र में यातायात के साधनों की कमी एवं दुर्गम पर्वतीय मार्गों की वजह से पशुपालन व्यवसाय को बढ़ावा मिला है। अतीत में भेड़, बकरियां ही पर्वतीय क्षेत्रों के दुर्गम मार्गों के लिए यातायात का मुख्य साधन थी। तिब्बत से लेकर गढ़वाल, कुमायूं, नेपाल आदि के दूरस्थ दुर्गम पर्वतीय अंचलों तक गुड़, नमक, उन, तेल आदि उपयोगी वस्तुओं को पहुंचाने का कार्य इन्हीं भेड़ बकरियों द्वारा किया जाता था। यहां पर भेड़ों का वही स्थान है जो रेगिस्तान में ऊंट तथा टुंड्रा प्रदेश में रेंडियर पशु का है। दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों जहां पर घोड़े खच्चर एवं जिबू नहीं जा सकते, वहां प्रत्येक भेड़ 15–20 किलोग्राम तक का वजन आसानी से ले जा सकती हैं। डॉ एसएस पंक्ति के अनुसार अतीत में जोहार मुनस्यारी का आवागमन का मार्ग बहुत कठिन था, इसीलिए 9 बकरियों के साथ 10 डगरिया चलकर दुर्गम मार्ग पार कर पाते थे। धीरे–धीरे यहां के मार्गों में सुधार होने के पश्चात लोग भेड़–बकरियों के अतिरिक्त गाय, बैल, घोड़ा, और जिबू भी पालने लगे। बैल एवं जिबू से कृषि कार्यों के साथ–साथ बोझा ढोने का काम भी लिया जाता है। तिब्बती पशु याक एवं भारतीय गाय से उत्पन्न नई प्रजाति को जिबू कहते हैं। जिबू पर्वतीय मार्गों में एक कुंतल तक का बोझा आसानी से ढो सकता है। यहां तिब्बती एवं नेपाली नस्ल के घोड़े, जिन्हें खच्चर कहा जाता है, भी पाले जाते हैं। नेपाल का जुबली घोड़ा भार वाहन तथा तिब्बती का हुमर्ती घोड़ा घुड़सवारी के लिए बहुत उपयोगी होता है। जोहार वासियों की कृषि की अपेक्षा भेढ़ पालन तथा व्यापार से अधिक आर्थिक लाभ को देखते हुए ब्रिटिश काल में यहां का भू राजस्व घटाकर पशु कर लगाया गया था। दूध के लिए यहां गाय एवं हल जोतने के लिए भारतीय नस्ल के बैल भी पाले जाते हैं।

उद्योग धंधे

तिब्बत से व्यापार बंद होने के पश्चात भोटियों का उद्योग धंधा भी काफी कम हो गया। फिर भी कुछ भोटियों ने अपने पैतृक व्यवसाय को सुदृढ़ करने का पूर्ण प्रयास किया है। इस जनजाति के प्रमुख उद्योग धंधे निम्नलिखित हैं–

- **ऊन उद्योग**

तिब्बत से ऊन का आयात होने तक यही उद्योग बहुत फला फूला। ऊनी वस्त्र तैयार करने का कार्य केवल महिलाओं तक ही सीमित था क्योंकि पुरुष वर्ग के लोगों को व्यापार के लिए पशुपालन एवं भेड़ बकरियों के साथ वर्ष के अधिकांश समय घर से बाहर रहना पड़ता था। इन उद्योगों की प्रमुख उत्पादक वस्तुएं स्त्री पुरुषों के परंपरागत ऊनी वस्त्रा, थुलमा, दन, पट्टू एवं चुटका हैं। इन सभी वस्तुओं का बाजार क्षेत्र संपूर्ण कुमायूं मंडल तथा नेपाल के पश्चिमी जिले हैं। नेपाल का गोकुल्लया मेला विशेषता भोटियों के द्वारा निर्मित ऊनी वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध है। भोटिया जनजाति के लोग विभिन्न प्रकार की ऊनी वस्तुओं के निर्माण में बहुत दक्ष होते हैं। रतन सिंह रायपा (1974) के अनुसार जोहार व्यांस दारमा, चौदांस के लोग ठंडे स्थानों में रहने के कारण अन्न का उत्पादन नहीं कर पाते, इसलिए तिब्बती ऊन से थुलमा, कंबल, पंखी, पशमीना एवं पट्टू आदि बनाकर उदर पूर्ति करते हैं। इनकी यह कला भारत भर में प्रसिद्ध है।

- **जड़ी–बूटी उद्योग**

जैसा कि पहले बताया गया है, हिमालय का पर्वतीय भू–भाग जड़ी बूटियों से प्रफुल्लित रहा है और यहां उत्पन्न होने वाली जड़ी बूटियों की सैकड़ों प्रजातियां औषधीय गुणों से भरी हुई हैं। यहाँ पर अतीस, जिम्बू, गन्द्रायण, थोया, लाल जड़ी, रूकी, मासी, हत्ताजड़ी, कुटकी, जर्क, डोलू, कूट, चिरैता, तिमूर, निर्बिसी, भोजपत्रा, मीठा जहर, टंखझाड़, ब्रह्मकमल, हडविष, वराहीकन्द, गोकुलधूप, बॉख (स्नेकलिली), गजनेरी, कस्तूरी कमल, वनमडुवा आदि जड़ीबूटियां पाई जाती हैं।

- **पर्यटन उद्योग**

पर्यटन की दृष्टि से यह क्षेत्र अनुपम है। यहां पर हिमालय की ऊंची–ऊंची श्रृंखलाएं, गहरी घाटियां विस्तीर्ण बुग्याल, घने जंगल और यहां की नैसर्गिक छटा ऋषि–मुनियों, तपस्वीओं और शांति के अनुयायियों का कर्म स्थल रहा है। मरतोली के शलांग ग्वार, पांछू के भदेली ग्वार तथा मिलम के धौरलांडर में कुछ तपस्वी साधुओं के खंडहर उनकी तप साधना के घोतक हैं। मिलम ग्लेशियर के किनारे स्थित सरोवर का नाम शांडिल्य कुंड होना, शांडिल्य ऋषि के नाम पर रखा गया है।

भारत में विदेशी लोगों के आगमन के साथ ही हिमालय के ऊंचे–ऊंचे शिखरों पर विजय पताका फहराने की एक होड़ सी लग गई है– जॉर्ज विलियम ट्रेल के पश्चात एडोल्फ, कुर्टबुच, लोंगस्टाफ,गैंन्सीर, आदि अनेक यूरोपीय लोगों ने नंदा देवी, नंदकोट, हरदेवल और त्रिशूली आदि हिम शिखरों पर यात्रा की है। इन पर्वत प्रेमियों के अनेक साहसिक कार्यों के कारण जोहार घाटी विश्व के पर्यटकों के लिए आकर्षण का प्रमुख केंद्र बन गई है। यहां के प्रमुख पर्वतारोहण

स्थल हैं मुनस्यारी मिलन, मुनस्यारी मलारी, मिलम ग्लेशियर, मिलम–रालम–सीपू, मुनस्यारी–खलिया बोगड्यार, मुनस्यारी–भदेली ग्वार, मुनस्यारी रालम, मदकोट–सोबला आदि।

इसी तरह दारमा, व्यांस एवं चौंदास भी पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है यहां के मुख्य पर्यटन स्थल हैं– नारायण धाम, पचचूला ज्योलिंक, छियालेख, मनेला, जौलजीवी, मौत की गुफा, छंगरू राखू आदि। कैलाश मानसरोवर की यात्राा भी दारमा के मार्ग से हाकर गुजरती है।

सामाजिक व्यवस्था

पिथौरागढ़ जनपद की भोटिया जनजाति को दो प्रमुख सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है क्योंकि इन दोनों सामाजिक क्षेत्रों की सामाजिक व्यवस्था में पर्याप्त अंतर प्रतीत होता है।

▪ जोहार (मुनस्यारी) के भोटिया

ईटी एटकिंसन के अनुसार जोहार के भोटिया ब्राह्मण एवं राजपूत 2 जातियों में बंटे हुए हैं। वे अपनी उप जातियों जैसे गोत्र, शाखा एवं प्रवर के विषय में अनभिज्ञ हैं। कुछ लोग अपनी उत्पत्ति गढ़वाल के रावतों से बताते हैं और कुछ लोग स्वयं को कौंशिल गोत्र का मानते हैं, जबकि अन्य बनारस के भट्टों से संबंधित मानते हैं और कौशिक गोत्र बताते हैं। यह जनेऊ नहीं पहनते हैं किंतु अन्य हिंदुओं की तरह शिखा रखते हैं। जोहार में भोटिया ब्राह्मणों के प्रमुख वंश द्विवेदी, पाठक, नौरागी, काराखेती, पोल्वाल, दरमोला, उपाध्याय एवं नगीला हैं। राजपूतों में जंगपांगी एवं टोलिया स्वयं को नेपाल के जुमला क्षेत्रा से आए हुए मानते हैं। जबकि मरतोलिया अपने को बनारस के भट्टों से संबंधित मानते हैं। इन राजपूत वर्गों के नाम बिर्जू, मीलम, बुर्फू, सेन, नमजल, चुलकोट, रिलकोट, रिंगू, लास्पा, ल्वाल, सेनाथी, धामीगांव, खिलांच, घोरपाटा, धापा, मानी, रालम, पपाडा, हरकोट इत्यादि गांव के नाम पर पड़े हैं। इसके अतिरिक्त नित्वाल, पाँक्ती, अस्पवाल, मेहतास, कुनकिया, शुभत्याल, तमक्याल, भट्याल एवं जोशयाल आदि लोगों के नाम भी गांवों के नाम पर आधारित हैं।

जोहार के प्रमुख इतिहासकार डॉ. एसएस पांगती ने जोहार की भोटिया जनजाति को दो सामाजिक वर्गों में विभक्त किया है। यह वर्ग में शौका वर्ग एवं नित्याल वर्ग।

शौका वर्ग: कुमायूं में चंद शासनकाल के उत्तरार्ध में जोहार में केवल बुर्फाल, ल्वांल एवं रहलम्बालों का प्रभुत्व था। इस समय कुछ बाहरी लोग भी यहां आकर निवास करने लगे थे। इनमें मिलन के मिलम्वाल एवं मरतोली के मरतोलिया प्रमुख थे। यह लोग आपस में अक्सर झगड़ते रहते थे और इनके प्रत्येक गांव अपनी जन शक्ति बढ़ाने के लिए बाहरी व्यक्तियों को बुलाकर अपनी बिरादरी में शामिल कर लेते थे यही कारण है कि जो हार के मोतियों की प्रत्येक उपजाति में अलग–अलग वर्ग हैं और एक बिरादरी के होते हुए भी प्रायः उनके मूल पुरुष एक नहीं हैं। 17 वीं शताब्दी में जोहार के 12 गांवों में 22 उप जातियों के शौका निवास करते थे, जो बारह गर्खा कहलाते थे। बाद में इन बारह गरखाओं की भी अलग–अलग उपजातियां बन गई।

नित्वाल वर्ग: जोहार के शौका समाज द्वारा वैदिक संस्कृति अपनाने से पहले धार्मिक अनुष्ठान तिब्बती लामा गुरुओं से न कराकर प्रत्येक गांव में शौका समाज के ही एक वर्ग द्वारा संपन्न कराई जाती थी। यह वर्ग नित्वाल वर्ग कहलाता था। यह नित्वाल वर्ग के लोग गढ़वाल के विभिन्न भागों से आकर यहां के विभिन्न गांव में बस गए हैं। यह लोग देवी देवताओं के पुजारी होते थे और इस कार्य हेतु पूजा के अवसर पर गांव की ओर से उन्हें कुछ उपहार दिया जाता था। इन लोगों के वैवाहिक संबंध अन्य शौकाओं के साथ न होकर नित्वाल लोगों में ही होता था।

जोहार के शौका समाज में जाति व्यवस्था के अनुसार धार्मिक तथा सामाजिक कार्य विभाजन के अतिरिक्त एक सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन की भी व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक गांव में कार्य कुशलता के मापदंडों पर बूढ़ा, फौजदार एवं सयाना आदि पद बनाए गए थे। परिवार के सबसे बड़े पुत्र या गांव के सबसे व्यस्क व्यक्ति को बूढ़ाचारी का पद दिया जाता था, जो गांव का मुखिया होता था और यह पद वंशानुगत था। बूढ़ाचारी की सहायता हेतु, एवं अन्य गांव के लड़ाई झगड़ों में सामना करने हेतु, साहसी एवं वीर व्यक्तियों को फौजदार बनाया जाता था। बूढ़ाचारी का पद ही बाद में प्रधान का पद बन गया था। बूढ़ा और फौजदार के पश्चात गांव के एक बुद्धिमान तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति को सयाना पद प्रदान किया जाता था, जिसका कार्य गांव के पारस्परिक विवादों को न्यायोचित ढंग से निपटाना था। बूढ़ा और सयाना के कार्यों में सहायता करने के लिए प्रत्येक गांव में रिड़ला की नियुक्ति की जाती थी। सामाजिक तथा क्षेत्र के कार्यों को सुव्यवस्थित रुप से संचालित करने हेतु बूढ़ा तथा सयाना के अतिरिक्त जोहार के 12 गर्खाओं का एक सामूहिक संगठन भी था। गोरखा शासनकाल में जोहार के प्रत्येक गांव में पंचायत राज व्यवस्था थी।

▪ दारमा के भोटिया

एटकिंसन के कथन अनुसार दारमा पट्टी में ब्राह्मण नहीं है। मल्ला एवं तल्ला में राजपूतों के अनेक वर्ग हैं जिनका नामकरण विभिन्न गांव के नाम पर हुआ है जैसे दुग्तू से दुग्ताल, बौना से बौनाल। इसके अतिरिक्त फीलम, लामा, शीपू, चल, शौन, दर, वतन, जुम्कू, मारछा, गो, एवं दांतु इत्यादि गांव के नाम से विभिन्न राजपूत बंशो के नामकरण हुए हैं। व्यास पट्टी के राजपूत बच्चों के नाम तिंखर, गर्व्या, छलमा, कुथी, नपल्व्यू, नाभि, बूंदी, गुंजी इत्यादि गांव के नाम पर पड़े हैं। चौदांस के लोग चौदांसी कहलाते हैं।

दारमा क्षेत्र के प्रसिद्ध शिक्षाविद रतन सिंह रायपा का कहना है कि दारमा, ब्यांस तथा चौदांस के भोटिया स्वयं को राजपूत कहते हैं और भौटांतिक बोली में अपनी जाति 'रं'बताते हैं। 'रं' शब्द का शाब्दिक अर्थ भुजा होता है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ब्रह्मा की भुजाओं से ही क्षत्रियों की उत्पत्ति बताई गई है। शौका अपने नाम के बाद सिंह लिखते हैं।

परिवार संरचना

इस जाति में पितृसत्तात्मक परिवार पाए जाते है। ज्यादातर समाज की तरह ही भोटिया जनजाति में भी पिता के नाम पर वंश चलता है निसंतान व्यक्ति द्वारा दत्तक पुत्रा रखने पर वंश परंपरा उस पुत्र के गोत्र से ही चलती है। यदि कोई व्यक्ति निसंतान है तो वह अपने भाई के द्वितीय पुत्र या किसी भी अन्य बच्चे को धर्मपुत्र बना सकता है। पिता या परिवार का वरिष्ठ पुरुष ही परिवार का प्रधान होता है। परिवार के मुखिया के आदेशों का पालन करना प्रत्येक सदस्य के लिए आवश्यक है। परिवार के सभी सदस्यों में मुखिया द्वारा कार्यों का विभाजन स्पष्ट रूप से कर दिया जाता है। ज्यादातर परिवारों में पुरुष वर्ग का प्रमुख दायित्व कृषि एवं व्यापारिक कार्यों द्वारा धन उपार्जन करना है तथा भोजन वस्त्र एवं मकान आदि की व्यवस्था करना है। जबकि स्त्री सदस्यों के मुख्य कार्य पारिवारिक दायित्व के साथ–साथ कृषि कार्यों में सहायता करना एवं ऊन की कताई बुनाई आदि करना है। व्यास पट्टी में पुरुष वर्ग के ज्यादातर लोग तिब्बत में व्यापार को जाते थे अतः यहां की स्त्रियां भोजन व्यवस्था के अतिरिक्त कृषि कार्य भी करती थी। चौंदास पट्टी के भोटियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि है, यहां स्त्रियां कृषि कार्य में संलग्न रहती हैं और पुरुष वर्ग भोजन निर्माण में उनकी सहायता करते हैं। जोहार क्षेत्र में स्त्रियों के संपूर्ण कार्य घर की चारदीवारी के अंदर तक ही सीमित हैं।

अवनींद्र कुमार जोशी (1983) के अनुसार भोटिया जनजाति में संयुक्त परिवार प्रणाली विद्यमान है और संयुक्त परिवार का कोई भी सदस्य अन्य सदस्यों की सहमति के बिना संपत्ति का अपना भाग अन्य किसी भी व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं कर सकता था। पिता के जीवित रहते हुए पुत्रों का पिता या स्वयं अर्जित संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता था। पिता के जीवन काल में संपत्ति के विभाजन की मांग नहीं कर सकते थे, न ही पिता की संपत्ति पुत्रों या पोत्रों द्वारा लिए गए

कर आदि की अदायगी के लिए प्रयुक्त होती थी। पिता अपनी पैत्रक या स्वं अर्जित संपत्ति को अपनी इच्छा अनुसार किसी को भी हस्तांतरित कर सकता था। यदि कोई व्यक्ति संपत्ति विभाजन के उपरांत निसंतान या दिवंगत हो जाता है तो उसकी संपत्ति का हिस्सा उसकी विधवा पत्नी को मिलता है।

भोटिया समाज में स्त्रियों का स्थान विशेष सम्मान जनक है वे पुरुषों के प्रत्येक कार्य में उनकी सहभागनी होती हैं। सुखदेव पंत (1935) का कथन है कि भोटिया लोगों में विशेष रूप से चौदांस, व्यास, दारमा में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण है। इनमें पुरुष वर्ग तो सदैव व्यापार के लिए घर से बाहर रहता है अतः समस्त घरेलू कार्य स्त्रियां ही संपन्न करती हैं। डॉ. शिव प्रसाद डबराल (1966) क्षेत्र की स्त्रियों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वे सदैव प्रसन्न रहती हैं और साधारण विपत्तियों की चिंता न करते हुए सदैव हंसती रहती हैं। वह स्वावलंबी, कष्टसहिष्णु, पुरुषार्थी और अपनी सूझबूझ से कार्यों में संलग्न रहती हैं। वे सदा भविष्य के लिए कुछ न कुछ बचाकर रखती हैं। परिस्थितियों ने उन्हें मितव्यापी, अग्रसोची और साहसी बना दिया है। भोटिया समाज में एक पत्नी प्रथा का प्रचलन है जौहारी शौका स्त्रियों में पर्दा प्रथा है, किंतु दारमा की शौका स्त्रियों में पर्दा प्रथा नहीं है। वे श्वसुर, देवर एवं अन्य किसी अपरिचित व्यक्ति से खुलकर बात कर सकती हैं। इस समाज में अनमेल एवं अंतर जाति विवाह भी होते हैं।

निष्कर्ष

उत्तराखंड की भोटिया जनजाति एक अनूठी और प्राचीन समुदाय है जिसकी सांस्कृतिक परंपराएँ और समृद्ध विरासत बहुत गहरी हैं। उनकी विशिष्ट शारीरिक विशेषताएँ, पारंपरिक पोशाक, अनोखा भोजन और सामाजिक रीति–रिवाज तिब्बती और मंगोलियन प्रभावों का मिश्रण दर्शाते हैं। कृषि, पशुपालन और व्यापार पर जनजाति की निर्भरता, ऊनी कपड़े के उत्पादन के उनके पारंपरिक ज्ञान के साथ, चुनौतीपूर्ण हिमालयी वातावरण में उनकी अनुकूलनशीलता और लचीलेपन को रेखांकित करती है।

1962 के भारत–चीन युद्ध के बाद तिब्बत के साथ व्यापार बंद होने जैसी ऐतिहासिक घटनाओं से आए बदलावों के बावजूद, भोटिया लोगों ने अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखी है और अपने रीति–रिवाजों और परंपराओं को संरक्षित करना जारी रखा है। उनके त्यौहार, अनुष्ठान और सामाजिक प्रथाएँ उनकी जीवंत संस्कृति और आधुनिक प्रभावों के बीच अपनी विरासत को बनाए रखने की उनकी क्षमता का प्रमाण हैं। उत्तराखंड की सबसे पुरानी जनजातियों में से एक के रूप में, भोटिया समुदाय इस क्षेत्र के सांस्कृतिक परिदृश्य का एक अभिन्न अंग बना हुआ है, जो भारत की आदिवासी परंपराओं की विविधता और समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

संदर्भ

1. अटकिन्सन इ0 टी0। द हिमालयन गजेटियर, 1981 अ, खण्ड दो भाग एक, पृष्ठ 369।
2. अटकिन्सन इ0 टी0। द हिमालयन गजेटियर, 1981 व, खण्ड तीन भाग एक, पृष्ठ 83–151।
3. जार्डन, टेरी जी. एवं लेस्टर। द ह्यूमन मोसाइकः ए थिमेटिक इन्ट्रोडक्सन टु कल्चरल ज्योग्राफ, पृष्ठ 5।
4. जैन जे. के. एवं वोहरा। दनमाल विश्व का सांस्कृतिक भूगोल, 1983, पृष्ठ 18।
5. जोशी अवनीन्द्र कुमार। भोटान्तिक जनजाति, 1983, पृष्ठ 22–23।
6. जोशी एस. सी., जोशी कुमाऊँ। हिमालयः ए ज्योग्राफिक पर्सपेक्टिव आन रिनोर्स डेवेलपमेन्ट, पृष्ठ 195–96।
7. टेलर ग्रिफ्फिथ, ज्योग्राफी इन द ट्वन्टींथ सेन्चुरी, तृतीय संस्करण, 1960, पृष्ठ 13–14।
8. ट्रेल जार्ज विलियम । स्टेटिस्टकल एकाउण्ट आन द भोट महाल्स एमियाटिक रिकार्डस, 1828, 15, पृष्ठ 30–35।
9. डबराल शिवप्रसाद। उत्तराखण्ड के भोटान्तिक, 1966, पृष्ठ 21।
10. ढकरियाल डूंगर सिंह। हिमालयी सौका सांस्कृतिक धरोहर, 2004, भाग एक, पृष्ठ 95–96।
11. तिवारी आर. सी., त्रिपाठी शंकेश्वर। सांस्कृतिक भूगोल–परिभाषा विषय क्षेत्र तथा अध्ययन तत्व, 1988, पृष्ठ 10–17।
12. गूगल विकिपीडिया, 2024।
13. https://www.uttarakhandi.com/bhotia/
14. https://www.euttra.com/2022/03/bhotia-tribe.html